प्रथम अध्याय

समाजवाद

स मा ज वा द

समाजवाद का सामान्य विवेचन

`समाजवाद` अंग्रेजी भाषा के `सोशलिज्म` शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। `सोशलिज्म` लैटिन भाषा के `सोसियस` शब्द से निकला है जिसके अर्थ हैं - साथी, सहायक अथवा भागाधिकारी। समाजवाद के अर्थ हैं - भ्रातृत्व अथवा मित्रता, जिसमें सब मनुष्य समानता के भाव के साथ मिलकर काम करेंगे।[१]

समाजवाद उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बहुचर्चित तथा बीसवीं शताब्दी के चिन्तन में प्रमुख स्थान रखने वाली विचारधारा है। समाजवादी विचारधारा इतनी लोकप्रिय है कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को समाजवादी संबोधित किये जाने में गौरवान्वित तथा प्रगतिशील समझता है। यह आधुनिक युग का दर्शन है, नव-चिन्तकों के लिए प्रमुख आकर्षण है। समाजवाद बीसवीं शताब्दी के चिन्तन में प्रमुख स्थान रखने वाली विचारधारा है। सभी लोग इस बात में विश्वास करते हैं कि आज के युग में राज्य को कल्याणकारी बनाने के लिए समाजवाद के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है। आज प्रत्येक व्यक्ति तथा राज्य किसी-न-किसी दृष्टि से समाजवादी है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही सर विलियम हरकोर्ट ने घोषणा की थी - "अब हम सब समाजवादी हैं।"[२] यह आधुनिक युग के लिए प्रमुख आकर्षण है।

१- डा० लोहिया का समाजवादी दर्शन ; डा० ताराचंद दीक्षित, प्र०सं०, पृ० १९.

२- दि फ्यूचर आफ सोशलिज्म ; क्रासलैंड सी०ए०आर०, पृ० १०१

समाजवाद एक ऐसा शब्द है जिसकी समय-समय पर कई प्रकार से व्याख्याएं हुई हैं । इसका कारण सामाजिक परिस्थितियां हैं जो किसी चिन्तन को प्रभावित करती हैं । समाजवाद और समाजवादी इसका पहला लिखित प्रयोग १८८३ ई० में इटालियन भाषा में हुआ । यद्यपि कोल का कहना है कि इसका अर्थ आज के समाजवाद से बिल्कुल भिन्न था । कोल १७८९ ई० को आधुनिक समाजवादी विचारों के आरम्भ के रूप में स्वीकार करता है और उसका कहना है कि इस समय से विचारों तथा आंदोलनों में सम्बन्ध बढ़ना शुरू हुआ ।[1] आधुनिक युग में समाजवाद का विशेष विकास हुआ; पर राजनीतिशास्त्र के विद्वान समाजवादी विचारों को प्लेटो की रिपब्लिक में भी खोजते हैं ।

समाजवाद की परिभाषा

समाजवाद की व्याख्या करते हुए गांधी, नेहरू, जयप्रकाश, नरेंद्र देव, लोहिया, सभी नैतिक आधार को लेकर चलते हैं ।

समाजवाद की कई परिभाषाएं हैं । पेरिस के एक पत्र `ले फिग्रो` ने १८९२ में ६०० समाजवाद की परिभाषाओं को एकत्रित किया था । डोन ग्रिफिक्स ने अपनी पुस्तक `व्हाट इज़ सोशलिज्म : ए सिम्पोसियम` १९२४ में समाजवाद की लगभग २६१ परिभाषाएं दी हैं ।

प्रो० ऐली के मतानुसार, `समाजवादी व्यक्ति वह है जो राज्य के अन्तर्गत संगठित समाज को इस दृष्टि से देखता है कि वह आर्थिक वस्तुओं का न्यायसंगत वितरण करने तथा मानवता को ऊंचा उठाने में सहायक हो ।

1- सोशलिस्ट थाट : द फोर रनर्स ; जी० डी० एच० कोल, पृ० ११

कोल -- समाजवाद से मेरा तात्पर्य उस सामाजिक व्यवस्था से है जिसमें मनुष्यों का विरोधी आर्थिक वर्गों में विभाजन नहीं होता, किन्तु लगभग सामाजिक और आर्थिक समानता की दशाओं के अन्तर्गत साथ-साथ रहते हैं तथा सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए उपलब्ध साधनों का सामान्य प्रयोग करते हैं ।[1]

इंग्लैंड के प्रसिद्ध समाजवादी राजनीतिज्ञ रेम्से मैक्डोनल्ड -- सामान्य रूप से समाजवाद का उद्देश्य समाज के आर्थिक तथा भौतिक शक्तियों का मानवीय शक्तियों द्वारा संगठन एवं नियंत्रण करना है ।[2]

एलेक्जेंडर ग्रे -- बिना किसी परिभाषा का सुझाव देते हुए, समाजवाद के अन्तर्गत हम वह सब स्वीकार करते हैं जो न्याय या समानता की भावना से प्रेरित, वर्तमान विश्व की बुराइयों से भावातुर होकर उत्तम विश्व की प्राप्ति, सुधारों से नहीं किन्तु विध्वंसात्मक (विध्वंस का शाब्दिक एवं तटस्थ रूप में प्रयोग) साधनों द्वारा या यदि प्राथमिकता दी जाये तो समाज के स्वरूप एवं ढांचे में मूलभूत परिवर्तन करें ।[3] मेरे मतानुसार समाजवाद सामाजिक स्वामित्व का समर्थक है ।

- -

2- "No better dofinition of Socialism can be given in general terms than it aims at the organisation of the material economic forces of society and their control by the human forces." - Ramsay Mac-Donald J.; Socialism : Critical & Constructive; p.60.

1. "By socialism I mean a fromof society in which men and women are not divided into opposing economic classes but live together under conditions of approximate social and economic equality using in common. The means that lie to their hands of promoting social welfare." - Cole G.D.H.; The simple case for socialism; p.7.

डा० लोहिया ने समाजवाद की परिभाषा एवं उसके स्वरूप को मौलिक मोड़ दिया है । लोहिया ने समाजवाद की परिभाषा 'समानता एवं सम्पन्नता' ऐसे दो गंभीर शब्दों में देकर गागर में सागर भर दिया है । लोहिया की परिभाषा समाजवादी आंदोलन के मुख्य एवं केंद्रीय लक्ष्य को सर्वाधिक रूप से स्पष्ट करती है ।

डी० एच० कोल लिखते हैं कि समाजवाद में सिद्धान्त की अपेक्षा विश्वास की भावना अधिक है । यह एक ऐसे समाज को स्थापित करने की इच्छा तथा योजना है जिसका आधार सहयोग तथा भातृ-भाव हो, जो संगठित मजदूरों के आंदोलन द्वारा प्रतिफलित हो सके और यह समझे कि सामाजिक अधिकार तथा सामाजिक कर्तव्य समान हैं तथा जो उन वर्गीय सेवा संबंधी सभी प्रोत्साहन और प्रेरणा को स्वतंत्र कर सके जिनको पूंजीवाद अस्वीकार करता है । संक्षेप में यह मजदूर वर्ग का तत्वज्ञान है जो आर्थिक अनुभव के द्वारा सीखा गया है और अपने को समय की परिस्थितियों के अनुसार एक रीति अथवा कार्य योजना में परिवर्तित कर लेता है । इसके द्वारा शासन प्राबल्य का विनाश होता है और वर्गीय आधिपत्य के मिट जाने से मनुष्य स्वतंत्र हो जाते हैं ।[४]

३- For the present, Therefore without suggesting that it even remotely foreshadows a definition, we shall accept all who, urged by a passion for justice or equality or by a Sensitiveness to the evils of this present world, seek a better world; not by way of reform, but by way of subversion (using the word in its literal and neutral sense) or if it be preferred, by a fundamental change in the nature and structure of society." - Gray Alexander; The Socialist Tradition; p.2.

४- समाजवाद की रूपरेखा ; अमरनारायण अग्रवाल, पृ० २२-२४

पारिभाषिक समस्याएं एवं कारण

समाजवाद की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजवाद की कोई सुनिश्चित, स्पष्ट तथा संतोषप्रद परिभाषा नहीं हो सकती। इनसे समाजवाद की संकीर्णता या व्यापकता का अनुमान लगाना असंभव है।

समाजवाद का अर्थ और विशेषताओं की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है लेकिन उनमें एकमत नहीं है। उनमें सहमति सिर्फ इस बात पर है कि समाजवाद की निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती। समाजवाद क्या है ? समाजवाद के कौनसे तत्व हैं ? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता। समाजवाद के अतिरिक्त और किसी आंदोलन पर इतना अधिक विवाद हुआ है और न परिभाषा के विषय में इतनी कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं।

समाजवाद जितना लोकप्रिय है, उतना ही अनिश्चित है। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त एशिया और अफ्रीका के देश जैसे-जैसे स्वाधीन हुए, लगभग सभी ने अपनी औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था में सुधार करने हेतु समाजवाद का आश्रय लिया। परिणामत: एशियाई समाजवाद, चीनी समाजवाद, भारतीय समाजवाद, अरब समाजवाद, अफ्रीकी समाजवाद आदि कई समाजवादी स्वरूप सामने आये। इनमें कुछ तो प्रजातांत्रिक राज्य हैं, बहुत से राज्यों में सैनिक तानाशाही है, लेकिन सभी स्वयं को समाजवादी कहते हैं। इस परिस्थिति ने समाजवाद के प्रति भ्रम में और भी वृद्धि की है।

वास्तव में आज यह प्रश्न नहीं है कि समाजवाद क्या है, किन्तु यह कहना चाहिए कि समाजवाद क्या नहीं है। समाजवाद की परिभाषा एक समस्या बन गयी है। इसके निम्नलिखित कारण दिये जाते हैं :

समाजवादी बहुत से सम्प्रदायों में विभक्त हैं। ये सम्प्रदाय एक-दूसरे से सर्वदा भिन्न हैं। इन विचारधाराओं के अलग-अलग नाम हैं; जैसे -

गिल्ड समाजवाद, सिंडीकलवाद, अराजकतावाद, सामान्यवाद आदि । इन सम्प्रदायों के कई प्रवक्ता हैं और प्रत्येक प्रवक्ता के हाथों में समाजवाद भिन्न-सिद्धान्त प्रतीत होता है । इस प्रकार समाजवाद के अनेक भिन्न-भिन्न रूप विकसित होते हैं ।

समाजवादी सम्प्रदायों के कार्यक्रमों, साधनों आदि की दृष्टि से यदि समाजवाद के वास्तविक अर्थ तथा रूपों का अध्ययन किया जाये तो कहना असंभव हो जायेगा कि वास्तव में समाजवाद क्या है तथा किस विचारधारा, आंदोलन या नीति को समाजवाद कहा जाय । सभी अपने-अपने समाजवाद के वास्तविक होने का दावा करते हैं ।

समाजवाद शब्द का एक विचारधारा और राजनीतिक आंदोलन दोनों के ही रूप में प्रयोग किया जाता है । समाजवाद यह एक आदर्श, एक दर्शन, एक विश्वास, एक जीवन प्रणाली आदि सभी रूपों में प्रयुक्त होता है । समाजवाद का राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष एक-दूसरे से घनिष्टतापूर्वक संबंधित है । "इसके केवल राजनीतिक पक्ष का विवरण देना न केवल अव्यावहारिक है अपितु अवांछनीय भी ।"[1] समाजवाद के समर्थकों की संख्या लगभग असीमित है । इनके द्वारा इस विचारधारा की इतनी व्यापक और बृहद् सामग्री प्रस्तुत है कि विशुद्ध समाजवाद क्या है, यह बतलाना अत्यन्त कठिन है ।

समाजवाद के तत्व एवं विशेषताएं

समाजवाद को समझने के लिए उसके तत्व एवं विशेषताओं को समझना भी जरूरी है । जो कठिनाइयां समाजवाद को परिभाषित करने में है, उन्हीं ने समाजवाद के तत्वों को स्पष्ट करने में उलझनें प्रस्तुत की हैं ।

१- आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त ; प्रवेशिका, पृ० ११

कई बातों में समाजवादी सम्प्रदायों में एकमत नहीं है । कुछ बातों में वे परस्पर विरोधी भी हैं । समाजवाद व्यक्तियों की अपेक्षा समाज पर अधिक बल देता है । सामाजिक हितों की अपेक्षा व्यक्तिगत हितों की महत्ता कम ही होती है ।

समाजवादियों की विशेषताएं हैं - वे स्पर्धा की भावना का विरोध करते हैं । स्पर्धा को व्यक्तिवादी एवं पूंजीवादी व्यवस्थाओं का एक दुर्गुण समझते हैं । समाजवादी इसके स्थान पर सहयोग की भावना का समर्थन करते हैं ।

समाजवादी निजी सम्पत्ति को शोषण का मूल कारण मानते हैं । वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के दुर्गुणों को दूर करने के लिए उसके नियंत्रित, मर्यादित और समाजीकरण के पक्ष में हैं ।

समाजवाद का मूल मंत्र समानता है । समाजवाद विषमता की उन अवस्थाओं को दूर करना चाहता है जिसमें कुछ व्यक्ति बिना परिश्रम किये ही ऐशो-आराम की जिंदगी गुजारते हैं ।

समाजवादी समर्थक व्यक्तिवादी और यदभाव्यम् नीति के विरुद्ध हैं । समाजवादी पूंजीवादी व्यवस्था के दोषों को दूर कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय को चाहते हैं । इसलिए आर्थिक विकास आवश्यक है । सामाजिक हित में समाजवादी इन सभी कार्यों का उत्तरदायित्व राज्य पर छोड़ते हैं ।

समाजवाद की विशेषताओं के बारे में यह समझना आवश्यक है कि जिन तत्वों का उल्लेख किया गया है, उनपर समस्त समाजवादी सम्प्रदाय सहमति व्यक्त करते हैं किन्तु वे किस पक्ष का कहां तक पालन करते हैं, उनको किस अंश तक महत्व आदि देते हैं - इनमें बहुत अन्तर है । ऐसा अन्तर समाजवादी शाखाओं के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है । समाजवादी समाजवाद की स्थापना शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक साधनों से ही करना चाहते हैं ।

आधुनिक समाजवाद

आधुनिक समाजवाद का जन्म यूरोप में हुआ । इसका विकास अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में हुआ । १८ वीं शताब्दी में यूरोप के निरंकुशवाद और सामन्तवाद अपनी सीमा पार कर चुके थे । भोग-विलास, क्रूरता, शोषण आदि इस व्यवस्था की विशेषताएं थीं । उच्च वर्ग के थोड़े से व्यक्तियों द्वारा असीमित बहुमत का शोषण करना, उनके अधिकारों का गला घोटना यूरोप में एक साधारण बात थी ।

क्रांतिकारी रूप -- फ्रांस की क्रांति के पूर्व तथा उसके समकालीन कुछ ऐसे दार्शनिक रहे लेखक हुए जिनके विचारों में आधुनिक समाजवादी तत्वों का पूर्ण आभास मिलता है । फ्रांस की क्रांति वास्तव में इन्हीं की अभिव्यक्ति थी । इस क्रांति ने विशेष हितों पर आधारित तत्कालीन व्यवस्था और संस्थाओं को चुनौती दी थी । फ्रांस की क्रांति असफल तो हुई किन्तु उसने समकालीन और आगे आने वाली पीढ़ियों के विचार-चिन्तन को झकझोर दिया । सैद्धांतिक रूप में आधुनिक समाजवाद अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के दार्शनिकों के विचारों का विस्तार है ।

१९ वीं शताब्दी को औद्योगिक क्रांति का युग माना जाता है । वैज्ञानिक आविष्कारों ने उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि की । इस क्रांति का लाभ मुख्यत: उच्च और धनिक वर्ग को ही मिला । औद्योगिक क्रांति से श्रमिक वर्ग का भी जन्म हुआ । जो दशा कृषि-श्रमिक, छोटे-छोटे कारीगरों की थी, वही हालत औद्योगिक श्रमिकों की भी हो गयी । इस क्रांति से अनेक व्यक्ति बेकार हुए । एक ओर श्रमिक वर्ग बेकारी, भूख और बीमारी का शिकार था तो दूसरी ओर रियायती वर्ग धन और विलास में डूबा जा रहा था । इस परिस्थिति का समर्थन उस समय प्रचलित एक महत्वपूर्ण विचारधारा ने भी किया ।

व्यक्तिवाद उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक एक सम्भ्रान्त विचार-धारा थी । व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने तत्कालीन चिन्तन को बहुत प्रभावित किया । इसके अन्तर्गत समाज एवं राज्य के स्थान पर व्यक्ति को प्रधानता दी जाती थी । यद्यपि यह विचारधारा व्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक थी, व्यावहारिक रूप में इसने पूंजीवर्ग की सहायता की । आर्थिकक्षेत्र में यह विचार-धारा मुक्त प्रतियोगिता, शासन का न्यूनतम नियंत्रण तथा लाभ सिद्धान्तों पर आधारित थी ।

फ्रांस की क्रांति ने आंदोलनों का मार्ग पहले ही प्रशस्त कर दिया । अब यूरोप में आंदोलन और क्रांतियों की एक शृंखला-सी लग गयी । यूरोपीय महाद्वीप में चल रहे आंदोलनों और क्रांतियों की विभिन्न सीढ़ियों में जैसे-जैसे प्रगति हुई, लगभग उसी अनुपात में समाजवाद का विकास होता गया । आधुनिक समाजवाद को एक व्यवस्थित विचारधारा के रूप में प्रारंभ करने का श्रेय यूटो-पियायी समाजवादियों को है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मार्क्सवाद ने समाजवाद को एक नया मार्गदर्शन कराया । समाजवाद को वास्तव में व्यवस्थित, वैज्ञानिक, आंदोलन-कारी एवं क्रान्तिकारी रूप देने में मार्क्सवाद का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । भारत में सबसे ज्यादा टकराहट समाजवादियों में है । नरेंद्र देव और राममनोहर लोहिया जैसा प्रखर समाजवादी भारतीय समाजवादियों के तौर-तरीकों की निंदा करते हैं ।

वास्तविक समाजवाद का सिद्धान्त आधुनिक है । समाज और राज्य की व्यवस्था को बदलने और उसे नया स्वरूप देने का विचार १९ वीं सदी से होने लगा है । समाजवादी विचारधारा के अनुसार उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तियों का निजी अधिकार न होकर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिए; अर्थात् उनका राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है ।

वर्ग-संघर्ष -- आधुनिक समाजवाद का ध्येय समाज तथा राज्य की ऐसी व्यवस्था करना है जिसमें कोई दूसरे का शोषण न करे अर्थात् हिंसा का कोई स्थान न रहे । राममनोहर लोहिया ने पचमढ़ी-सम्मेलन के भाषण में कहा था - "आधुनिक समाजवाद को कम-से-कम संसार के पिछड़े हुए देशों में अनिवार्य रूप से वर्ग-संघर्ष का आश्रय लेकर चलना होगा । ......वर्ग-संघर्ष शांतिपूर्ण रीति से, सत्याग्रही रीति से चलाया जाये ।"[1] आधुनिक समाजवाद की गति भारत में साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण के विरोध में प्रकट होती है । संयोग से उसी समय अक्तूबर में सोवियत समाजवादी क्रांति हुई ।

समाजवाद की दृष्टि से समाज की अशान्ति और विषमता का मुख्य कारण उत्पादन के साधनों पर व्यक्तियों का निजी स्वामित्व । यदि इन साधनों पर सारे देश का सामूहिक स्वामित्व स्थापित हो जायेगा तो अशांति और विषमता का लोप हो जायेगा और वर्ग-संघर्ष का अंत हो जायेगा; क्योंकि सब लोग समान रूप से जीवन व्यतीत करेंगे, न कोई शोषक होगा और न कोई शोषित ।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि आधुनिक समाजवाद को एक सुदृढ़ और स्वतंत्र मार्ग प्रदान करने के लिए कुछ सुनिश्चित सिद्धान्तों की आवश्यकता है । उन्हीं सिद्धान्तों की नींव पर ही आधुनिक समाजवाद का कल्याणकारी भवन खड़ा हो सकता है ।

महान समाजवादी विचारक

डा० राममनोहर लोहिया

एक समाजवादी विचारक और शोषितों के हितैषी के रूप में डा० राममनोहर लोहिया विख्यात हैं । दु:ख तो इस बात का है कि अब उनकी

- -

१- भारत में वैज्ञानिक समाजवाद ; श्री० पी० सिन्हा, पृ० १००

सबसे अधिक आवश्यकता थी तो वह हमारे बीच नहीं रहे ।

डा० लोहिया सामाजिक परम्पराओं के विरोधी और आदर्शों के लिए प्राण देने वालों में से एक थे । राष्ट्रीय वातावरण में जन्म लेने और राष्ट्र-भक्त पिता की संतान होने के कारण इनपर राजनीति में भाग लेने पर कभी कोई बंधन नहीं डाला गया । १४ वर्ष की आयु में डा० लोहिया ने गया कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया । इसके पश्चात् गौहाटी सम्मेलन में हिस्सा लिया । इनकी आरंभिक शिक्षा बम्बई और कलकता में हुई । उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी गये । वहां से उन्होंने राजनीतिक दर्शन में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की । डा० लोहिया के लिए राजनीति केवल अध्ययन का विषय नहीं था । वह उनके जीवन का अंग बन गया था और जीवन के अंत तक वह उसमें निमग्न रहे । राजनीति के क्षेत्र में और समाज-चिन्तन के क्षेत्र में उनकी देनें अभूतपूर्व हैं ।

स्मरणीय योगदान -- जर्मनी से जब वे लौटे तो उनको नौकरी के निमंत्रण मिले, किन्तु उन्होंने अस्वीकार किये ताकि मातृभूमि की सेवा कर सकें । डा० लोहिया को जब जवाहरलाल नेहरू ने देखा तो उन्होंने उन्हें कांग्रेस के विदेश मामलों के विभाग का अध्यक्ष बनाया । अपने इस दायित्व को उन्होंने योग्यता से निभाया और पं० जवाहरलाल नेहरू के विश्वास को सर्वथा सार्थक सिद्ध किया । आजादी के पहले कांग्रेस की विदेश नीति के निर्माण में लोहिया का योगदान स्मरणीय है । यहीं से उनका राजनीतिक जीवन आरंभ हुआ । अनेक भारतीय भाषाओं के वह पूर्ण ज्ञाता थे । विदेशी भाषाओं का ज्ञान भी उन्हें था । विदेशों में अनेक लोगों से उनके अच्छे मैत्री संबंध थे । उनके इन सम्पर्कों ने कांग्रेस के विदेशी मामलों में बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । देश के समाजवादी आंदोलन के विकास में भी इन मैत्री संबंधों ने बहुत ही अधिक योगदान किया । डा० लोहिया के सम्पर्क में आने से यूरोप और अन्य देशों को यह ज्ञात हुआ कि कांग्रेस एक प्रगतिशील संस्था है । डा० लोहिया के प्रत्येक कार्य में चिन्तक और विचारक के रूप की स्पष्ट झलक दिखायी देती है । वह कांग्रेस-

सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापकों में से थे। उनके अन्य साथी आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन आदि थे। इस पार्टी का मूल उद्देश्य था कांग्रेस की विचारधारा को प्रभावित करना ताकि कांग्रेस समाजवाद को अपना लक्ष्य बना सके।

भारत की आजादी की लड़ाई में भी डा० लोहिया का योगदान है। १९४२ के पश्चात् उन्हें बहुत बार जेल जाना पड़ा। १९४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय उन्होंने एक आश्चर्यकारक भूमिका अदा की। उन्होंने आजाद हिन्द रेडियो, जो एक गुप्त रेडियो था, की स्थापना की और उसपर अनेक प्रसारण किये। पंद्रह महीनों तक भूमिगत रहने के पश्चात् डा० लोहिया बंदी बना लिये गये और उन्हें लाहौर के किले में बंद किया गया। वहां उन्हें अमानवीय यातनाएं सहनी पड़ीं। वे महान व्यक्तिवादी थे। उनका बातचीत करने का ढंग बड़ा रोचक और आकर्षक था। डा० लोहिया का योगदान केवल भारत की आजादी के लिए ही नहीं, बल्कि गोवा की आजादी के लिए भी था। उनका यह योगदान गोवावासी आज भी श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् उन्होंने देश की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए प्रयास किया।

डा० लोहिया महान विचारक के साथ-साथ लेखक भी थे। राजनीति में चिंतन उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी। 'भूमि-सेवा और एक घंटा देश को दो' के नारे उनके मौलिक चिंतन का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वे 'जन' नामक हिन्दी पत्रिका के संपादक थे। एक अंग्रेजी पत्रिका के भी संपादक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की; उनमें से 'संसार के मामलों में तीसरा आदमी', 'इतिहास चक्र', 'भारत की हिमालय संबंधी नीति', 'विश्व मस्तिष्क के संदेश' और 'मार्क्स, गांधी और समाजवाद' आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक चिन्तक -- वे एक महान समाजवादी थे। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में समानता की स्थापना के लिए सब प्रकार के संघर्ष करना वे अपने

जीवन का लक्ष्य समझते थे । उन्हें महात्मा गांधी के सामीप्य का सौभाग्य मिला था । गांधीजी के विचारों से वे बहुत प्रभावित थे । डा० लोहिया ने आजादी के पहले किसी भी असेम्बली में जाना पसन्द नहीं किया । आजादी की लड़ाई के बाद वे बहुत दिनों तक किसी संसद एवं विधानसभा में जाने से दूर रहे । उन्होंने नेहरूजी के विरुद्ध संसद के लिए १९६० में चुनाव लड़ने के लिए खड़े रहे । वहां वे असफल रहे किन्तु १९६३ में एक उपचुनाव में फर्रुखाबाद से चुनकर संसद में आ गये । इसके पश्चात् १९६७ में वे पुन: संसद के लिए चुन लिये गये । वहां उन्होंने अपने व्यक्तित्व की गरिमा को स्पष्ट रूप से मुखरित किया ।

डा० लोहिया हिन्दी के अनन्य उपासक थे और जल्द ही इसे राष्ट्र-भाषा का पद दिलाना चाहते थे । पद तो पहले ही मिल गया था । आवश्यकता थी उसकी गरिमा की प्रतिष्ठा की । इसलिए डा० लोहिया चाहते थे कि अंग्रेजी को दैनिक व्यवहार से समाप्त कर दिया जाय और उसके स्थान पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग किया जाय । वे एक महान सामाजिक चिंतक भी थे । वे एक ऐसे दूरदर्शी नेता थे जो क्षितिज के पार देखने की क्षमता रखते थे । डा० लोहिया महान समाजवादी चिंतक इस संसार से जल्दी ही चल बसे । जब तक देश में समाजवाद का नाम है तब तक लोग उनका स्मरण करते रहेंगे ।

आचार्य नरेन्द्र देव

आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म सन् १८८९ में सीतापुर के एक मध्यमवर्गीय के खत्री परिवार में हुआ था । आचार्यजी एक अध्ययनशील छात्र थे और इस कारण अपने पर्यावरण की घटनाओं को बिना देखे नहीं गुजर जाने देते थे । दस वर्ष की आयु में आचार्य नरेंद्र देव को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वे कांग्रेस का अधिवेशन देखने गये । वहां के वाद-विवाद से उनके मन पर गहरी छाप पड़ी । इसके प्रभाव ने उनके जीवन को एक नयी दिशा प्रदान की ।

आरंभिक शिक्षा सीतापुर और फैजाबाद में होने के बाद वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय पढ़ने चले गये। वहां एम०ए०, एल-एल०बी० की उपाधियां प्राप्त कीं और फैजाबाद में वकालत करने लगे। वकालत केवल पांच वर्ष करने के बाद वे असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। यहीं से राजनीति और शिक्षा उनके दो प्रिय विषय रहे। वे शरीर यष्टि से दुर्बल थे किन्तु विचार उनके उग्र और क्रांतिकारी थे। यह बात उनके जीवन में आरंभ से ही थी। १९०५ में एक दर्शक के रूप में कलकत्ता कांग्रेस में जाकर आये थे किन्तु तब कांग्रेस ने उग्र विचारधारा के लोगों को निकाल दिया तो आचार्यजी के मन से कांग्रेस का स्नेह जाता रहा। इसी कारण १९१० में आचार्यजी ने इलाहाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में दर्शक के रूप में भी जाने का कष्ट नहीं लिया। वे उस समय वहां पढ़ रहे थे। बाल गंगाधर तिलकजी के प्रशंसक आचार्यजी थे। अरविंद घोष के क्रांतिकारी और द्रष्टा के रूप के भी प्रबल प्रशंसक थे।

आचार्यजी का शिक्षा-प्रेम काशी विद्यापीठ, वाराणसी का आचार्य-पद ग्रहण करने के पश्चात् और भी मुखर हुआ। वैसे वे सामाजिक विचारक और शिक्षाशास्त्री थे। महात्मा गांधीजी ने असहयोग आंदोलन के पश्चात् देश में अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना की तो काशी विद्यापीठ वाराणसी का दायित्व आचार्य नरेंद्र देव को सौंपा गया। इसके पश्चात् वे राजनीति और शिक्षा दोनों को साथ लेकर चले। आचार्यजी भारतीय दर्शन, बौद्ध साहित्य और राजनीति के उद्भट विद्वान थे। रूसी साहित्य का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। आचार्यजी की विद्वता की सबसे बड़ी विशेषताएं यह हैं कि जहां एक ओर वे भारतीय दर्शन, बौद्ध दर्शन और साहित्य के उद्भट विद्वान थे, वहां मार्क्सवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के भी वे गहन अध्येता थे। उनकी इस विद्वता ने उन्हें अपनी विचारधारा के परिमार्जन में बहुत अधिक सहायता की।

समाजवादी विचारधारा -- सामाजिक चिंतन के कारण ही उनको भारतीय समाजवाद का जनक कहा जाता है । वे एक असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे । भारत में समाजवाद के प्रचार और प्रसार का बहुत कुछ श्रेय आचार्यजी को ही है । उन्होंने सबसे पहले इस बात का प्रयास किया कि कांग्रेस के नेताओं को प्रभावित कर उन्हें समाजवाद की ओर लाये । १९३३ में पटना में समाजवादी विचारधारा के समर्थकों का एक अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता आचार्यजी ने की । उनका भाषण भारतीय समाजवाद की ऐतिहासिक महत्व की कृति है जिसने तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक क्रान्ति पैदा कर दी थी ।

काशी विद्यापीठ का आचार्य-पद ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य नरेंद्र देव गांधीजी के निकट सम्पर्क में आये और काफी समय तक उनके वर्धा आश्रम में भी रहे । गांधीजी ने उनसे समाजवादी विचारधारा को समझने का प्रयास किया । संभवत: इसी विचारधारा के प्रभाव से गांधीजी ने अपने 'हरिजन' में एक बार लिखा था - "श्रम ही पूंजी है ।" गांधीजी आचार्यजी की विद्वता से इतना अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने उनको एक बार कांग्रेस का अध्यक्ष बनाये जाने का प्रस्ताव किया था । नेहरूजी तो उनका प्रगतिशील विचारक मानते ही थे । सुभाषचन्द्र बोस उनका सम्मान करते थे और उन्होंने अपनी कार्य-समिति का सदस्य बनने का निमंत्रण उन्हें दिया था ।

आचार्य नरेंद्र देव एक आदर्शवादी व्यक्ति थे । आदर्शवाद को केवल अपने व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं रखते थे । राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में भी उसको अनिवार्य मानते थे । जब समाजवादी दल ने कांग्रेस से अलग होने का फैसला किया तो उनके साथ-साथ आचार्य नरेंद्र देव ने विधानसभा की सदस्यता से त्यागपत्र देने का निश्चय किया ।

सामाजिक दर्शन -- आचार्य नरेंद्र देव काशी विद्यापीठ के उपकुलपति के अतिरिक्त लखनऊ विश्वविद्यालय और वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी रहे । इन पदों पर रहकर विद्वता के साथ-साथ आदर्शों का पूर्ण

निर्वाह किया । आचार्यजी ने इस देश को 'भारतीय समाजवाद' के रूप में एक ऐसा सामाजिक दर्शन प्रदान किया है जिसके द्वारा इस देश की पीड़ित और शोषित जनता का सच्चे अर्थों में कल्याण हो सकता है । मार्क्स के साहित्य का उन्होंने गहन अध्ययन किया था और उस अध्ययन की छाप उनके चिंतन पर स्पष्ट है किन्तु वह यह नहीं मानते थे कि मार्क्सवाद के ज्यों-के-त्यों ग्रहण करने का ही दूसरा नाम समाजवाद है ।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के समय अध्यक्ष-पद से दिया गया भाषण और उसके पश्चात् समाजवादी एवं प्रजासमाजवादी दलों के सम्मेलनों में अध्यक्ष-पद से दिये गये उनके भाषण उनकी समाजवाद की परिकल्पना को अधिक स्पष्ट करते हैं । आचार्यजी इस बात को नहीं मानते थे कि समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसा अनिवार्य है । गांधीजी के निकट सम्पर्क में रहने के कारण और गांधीजी के अहिंसा नामक अस्त्र की सफलता देखने के पश्चात् उनका इस प्रकार सोचना और विचार करना सर्वथा स्वाभाविक और उचित ही था । आचार्यजी ने बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया था, उसका प्रभाव उनके विचारों में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है । बौद्ध दर्शन पर लिखा गया उनका ग्रंथ बौद्ध दर्शन की सबसे अधिक विश्वसनीय व्याख्या प्रस्तुत करता है ।

उनकी विचारधारा में हमें राजनीति, शिष्टाचार और नैतिकता, तीनों का अनुपम समन्वय देखने को मिलता है । उनका व्यक्तिगत जीवन सुसंस्कृत था, उनके विचार सर्वथा सुसंस्कृत और स्पष्ट होते थे । उनके चिन्तन में कहीं भी अनिश्चितता की छाया देखने को नहीं मिलती है । इसलिए उनके समाजवाद की परिकल्पना बड़ी ही स्पष्ट थी । वे मानते थे कि समाजवाद की स्थापना के द्वारा समाज में शोषण और उत्पीड़न को समाप्त किया जा सकता है । महान विचारक आचार्य नरेंद्र देव अपनी पीढ़ी के लोगों के पहले ही इस संसार से विदा हो गये ।

निराला में समाजवाद और राष्ट्रीयता का स्फुरण था। निरर्थक संस्कारप्रियता, रूढ़िवादिता आदि के बंधनों को ध्वंसकर उन्होंने समाजवाद और राष्ट्रीयता का स्फुरण किया। सामन्तवादी पिता का पुत्र समाजवादी हो, वास्तव में कौतुहल है। निरंतर दुःख की छाया में पलने से निराला के हृदय में समाज के प्रति एक विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। राजनीतिक अत्याचारों एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति निराला ने विद्रोह किया और तीखे व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने अपनी कथा-कृतियों में क्रूरतम आघात किये।

निराला और यथार्थवाद

कृतियों में यथार्थ-रूप-चित्रण -- निराला और यथार्थवाद का गहरा संबंध है। उनका यथार्थवादी साहित्य जीवन की वास्तविकता से परिचित कराता है। उनके उपन्यास काले-कारनामे और चमेली, औपन्यासिक रेखाचित्र `कुल्लीभाट` और `बिल्लेसुर बकरिहा` में एवं कहानियां `देवी` तथा `चतुरी चमार` में यथार्थ जीवन की सहज स्वाभाविक झांकी दिखायी देती है। निराला अपनी दृष्टि से जीवन में व्याप्त यथार्थ का अवलोकन किया है और उसे अपने साहित्य में यथा-स्थान चित्रित किया है। निराला का यथार्थवाद मानवतावादी प्रवृत्तियों के संयोग से गद्य-साहित्य में अधिक कलात्मक बन सका है। निराला ने अपनी कहानियों में एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति को अपनाते हुए जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण किया है। कहानियों में वर्तमान अस्वस्थ समाज का चित्रण यथार्थवाद के आधार पर ही किया है। कथाकार निराला के व्यंग्य सामाजिक और यथार्थपरक हैं। पाठक के मन पर सहज चोट करना ही व्यंग्य का ध्येय है। व्यंग्य निराला के कथा-साहित्य और प्रभुतः उनके परवर्ती कथा-साहित्य का प्राण है।

सामाजिक यथार्थ -- `बिल्लेसुर बकरिहा` में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। निराला की यह एक प्रगतिवादी रचना है। निराला की यह एक प्रगतिवादी रचना है। निराला ने चमेली और काले कारनामे में यथार्थ-वादी चित्रण प्रस्तुत करके उस समय के जीवन की कटु आलोचना की है। निराला

का परवर्ती यथार्थवादी साहित्य व्यंग्य, विनोद, आक्रोश एवं घोर यथार्थ का साहित्य है । परवर्ती कृतियों में यथार्थ सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्बन हुआ है । इनमें जीवन की सभी परिस्थितियों के प्रति गहरी आस्था है । परवर्ती कृतियों में चित्रण एवं अध्ययन की यथार्थवादिता स्पष्टत: परिलक्षित होती है । ग्राम्य जीवन का सजीव चित्रण तो ऐसा लगता है जैसे यथार्थ के रंगों में हुआ है । निराला विशेषत: बिल्लेसुर बकरिहा और चमेली में भाषा, शैली, रचना-सौष्ठव तथा सामाजिक यथार्थ की ऊंची जगह पर पहुंचे हैं । ठेठ गांव की भाषा का प्रयोग चमेली में हुआ है । वह अनुपमेय है । निराला की भाषा भावानुगामिनी है । पात्रों की मन:स्थिति को स्पष्ट करने में भाषा अत्यधिक सक्षम एवं सक्षम है ।

यथार्थ में कला का निखार -- निराला ने देवी और चतुरी चमार जैसे निम्नवर्ग के पात्रों को नायकत्व देकर आज की सामाजिक विषमताओं पर गहरा प्रहार किया है । मनुष्य द्वारा शोषण का अन्त होने का स्वप्न गोर्की ने देखा था और उसी स्वप्न को उन्होंने बिल्लेसुर बकरिहा, कुल्लीभाट, चतुरी चमार, देवी, चमेली में प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत कृतियों के पात्र निम्नवर्ग के हैं और जीवन से संघर्षों से जूझते हुए अपनी जीवन यात्रा करते हैं । इनकी दुर्बलता का चित्रण निराला ने बड़ी सुंदरता से किया है । जैसे किसानों पर जमींदार की डिग्री दे दी । बाद को चतुरी वगैरह की बारी आयी । दावे दायर हो गये । अब तक जो सम्मिलित धन मुकदमों में लग रहा था, सब खर्च हो गया । पहले की डिग्री में कुछ लोगों के बैल वगैरह नीलाम कर लिये गये । लोग घबरा गये । चतुरी को मदद की आशा न रही ।[1] जीवन में आघातों को सहते हुए निराला का आदर्शवाद यथार्थ में बदल गया । निराला के पूर्ववर्ती उपन्यासों में आदर्श चित्र प्रस्तुत हैं । अलका, निरुपमा में आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का प्रयोग हुआ है । उनकी परवर्ती कथा-कृतियों में यथार्थ चित्रण ही एक आदर्श बन गया ।

१- निराला रचनावली-४ ; संपा० नंदकिशोर नवल, पृ० ३८६

यथार्थ चित्रण में उनकी कला और भी निखर कर सजीव बन गयी है । ग्रामीण जीवन के बहुविध पक्षों का चित्रांकन करते हुए ये जीवन के सहज स्वाभाविकता का निरूपण प्रगतिवादी दृष्टिकोण से करने में तल्लीन दिखायी देते हैं । निराला की आंतरिक सहानुभूति ने ही जनसाधारण के नेतृत्व का प्रोत्साहन किया है और ग्रामीणों को सामन्ती अत्याचारों, जातिगत उत्पीड़न एवं रूढ़िवादियों से संघर्ष लेने का बल प्रदान किया है जो अपने आपमें निराला के कथाकार की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

बेमेली में ग्राम्य जीवन की दुर्बलताओं का सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत है और यदि यह उपन्यास पूर्ण हो जाता तो संभवत: ग्राम्य जीवन का एक संपूर्ण यथार्थवादी चित्र देने का श्रेय निराला को मिलता । अलका और निरुपमा में ग्राम्य-चित्रण यथार्थ है । मात्रा-भेद के साथ ही निराला की कृतियों में शैली-भेद भी है । उन्होंने हिन्दी गद्य-साहित्य को एक नयी शैली प्रदान की है । अलका और निरुपमा तथा `सखी` कहानियों का आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी शैलीकार, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा तथा देवी` कहानी-संग्रह का यथार्थवादी शैलीकार और बेमेली का अति यथार्थवादी आंचलिक शैलीकार स्वयं निराला एक ही है । परवर्ती कथा-साहित्य में निराला संघर्षशील और यथार्थवादी प्रवृत्तियों को महत्व देते हैं ।

भारत और समाजवाद

रामराज्य का जो वर्णन रामायण में मिलता है, वह सर्व-मंगल-भावना का ही साकार रूप है । भारत में वैदिक काल से आज तक सच्चे समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिए सदा ही प्रयत्न होता रहा है । भारत में जिस समाजवाद की परिकल्पना की गयी है, वह इसी भूमि की देन है । उसके आदिजनक आचार्य नरेंद्र देव कहे जाते हैं । वैसे उसको वर्तमान स्वरूप देने में भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, डा० संपूर्णानंद, जयप्रकाश नारायण, डा० राममनोहर

लोहिया, अशोक मेहता आदि का श्रेय प्रशंसनीय है । भारत में समाजवाद की स्थापना के लिए १९३१ में ही कांग्रेस के अंदर समाजवादी दल का निर्माण किया गया । इस दल का निर्माण पं० नेहरू की प्रेरणा से हुआ था और कांग्रेस को समाजवाद के मार्ग पर ले जाने की दिशा में आचार्य नरेंद्र देव, जय-प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । एक समय ऐसा आया कि अधिकांश समाजवादियों को कांग्रेस से अलग होना पड़ा । इसका प्रभाव कांग्रेस संगठन पर अच्छा नहीं पड़ा ।

समाजवादी समाज -- भारत के संविधान में जिस भेदभावहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की गयी है, वह समाजवादी समाज है; यद्यपि संविधान में शुद्ध प्रयोग नहीं किया गया । आज देश के अधिकांश राजनैतिक दल इस बात को मानकर चलते हैं कि देश में समाजवाद की स्थापना द्वारा ही गरीब और अमीर के भेद को दूर किये जा सकते हैं । कांग्रेस के हाथों में इस देश के शासन की बागडोर है और इसने अपने घोषणापत्र में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख कर रखा है कि देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की जानी चाहिए । भारत के लिए समाजवाद के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं है । हम लोग ऐसा मानकर चलते हैं कि भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म और भारतीय मान्यताओं और समाज-वाद में कुछ विरोध है । ऐसी बात नहीं है । भारत की धार्मिक मान्यताओं में भी ऐसी बातों का उल्लेख है जिसके आधार पर सम्पत्ति का और राष्ट्रीय साधनों का बराबर बंटवारा संभव है । तात्पर्य यह कि भारत के आदिऋषियों और विचारकों ने समाजवाद में जिस बात की परिकल्पना की थी, भले ही अपने विचारों और अपने सिद्धान्तों को समाजवाद का नाम नहीं दे सके हों, लेकिन जिस समता तथा समानता और विश्वबंधुत्व एवं दानशीलता की बात भारतीय संस्कृति में कही गयी है, उसका मुख्य उद्देश्य है ऐसे समाज की संरचना करना जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव विद्यमान न हो ।

समाज-हित -- भारत में अधिकांश जनता गरीब है । गरीबी तभी मिटायी जा सकती है जब राष्ट्रीय साधनों पर समाज का नियंत्रण हो । यदि उत्पादन और विनिमय के साधनों पर संपूर्ण समाज का नियंत्रण नहीं होता और कुछ व्यक्तियों को उसका स्वामित्व प्रदान कर दिया जाता है तो सहज परिणाम यह होता है कि कुछ लोग लखपति से करोड़पति हो जाते हैं और शेष लोग उनके आश्रित बन जाते हैं । व्यक्तिगत स्वामित्व सामान्यत: लाभ की प्रेरणा से ही कार्य करता है । वह समाज के हित की बात नहीं सोचता । यदि ऐसा होता तो अमेरिका तथा अन्य पूंजीवादी व्यवस्था वाले देश में धन का समान वितरण होता किन्तु ऐसा नहीं हुआ । इस देश के लिए तो समाजवाद अनेक रोगों का उपचार है । यदि पूंजी कुछ लोगों के हाथ में केंद्रित हो जाती है तो सामाजिक मान्यताओं और धारणाओं के अनुरूप वह लोग राज्य के तंत्र पर भी अपना अधिकार जमा लेते हैं । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उत्पादन और विनिमय के साधनों पर व्यक्तियों के स्वामित्व को हटाकर समाज का स्वामित्व स्थापित किया जाय । आज हम देखते हैं कि जीवन की आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं । सामग्री के उपलब्ध होने पर भी उनका विधिवत् बंटवारा नहीं हो पाता । यह इसलिए होता है कि उत्पादन और वितरण के साधनों पर कुछ व्यक्तियों का स्वामित्व है । यदि समाज का स्वामित्व उनपर हो जाय तो इस प्रकार की कोई कठिनाई जनता के सामने न आये ।

मनुष्य प्रवृत्ति -- सामान्यत: समाजवाद के विरुद्ध यह तर्क दिया जाता है कि मनुष्य की प्रवृत्तियां ही स्वार्थी हैं । वे व्यक्तिगत हित की बात अधिक सोचते हैं । इस स्थिति में समाजवादी व्यवस्था में वह सामान्यजन की क्या सोचेंगे । उनकी व्यक्तिगत प्रोत्साहन और प्रेरणा की भावना समाप्त हो जायेगी और वे कुशलतापूर्वक कार्य न कर सकेंगे । मनुष्य को जिस रूप में बनाते हैं, वह उसी प्रकार बनता है । यदि हम किसी व्यक्ति को स्वार्थी बनाते हैं तो वह बनता है । युगों से पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत रहने के कारण मनुष्य में

यह प्रवृत्ति बन गयी है कि वह अपने हित की बात अधिक सोचता है, समाज की कम । यदि समाजवादी व्यवस्था की मान्यताओं पर उसे शिक्षा दी जाय और उसके व्यक्तित्व का निर्माण उसकी मान्यताओं के अनुरूप किया जाय तो इसमें दो मत नहीं हो सकते कि वह उनको अपने जीवन का अंग बना लेगा और इन्हीं के अनुरूप कार्य करने का प्रयास करेगा । आवश्यकता केवल इस बात की है कि उन मान्यताओं के आधार पर सारे ढांचे का निर्माण किया जाय । समाजवाद एक व्यापक सामाजिक हित की बात है । समाजवाद की स्थापना के बाद भी व्यक्ति को अपनी मान्यताओं, अपनी आस्थाओं और अपने विश्वासों को सुरक्षित रखने का अधिकार होगा । विशेषकर भारत में जिस समाजवाद की स्थापना की बात कही जाती है, उसमें तो धर्म और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को पूरा-पूरा स्थान है ।

समाजवाद एक युगधर्म -- समाजवाद आज का युगधर्म है । यदि वह जनतांत्रिक ढंग से स्थापित नहीं होता तो अन्ततोगत्वा किसी-न-किसी रूप से स्थापित अवश्य होगा । गरीब और अमीर का भेद मिटाना ही होगा । इस भेद को मिटाने का उपाय समाजवाद ही है । संभव है उसे कुछ लोग समाजवाद का नाम देना चाहते हों, झगड़ा नाम का नहीं है, झगड़ा है जीवन-प्रणाली और सामाजिक प्रणाली की स्थापना का । ऐसे लोग जो देश और समाज में गरीब और अमीर का भेद मिटाकर एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें सभी लोगों को समान सुविधाएं मिलें और सभी लोगों से यथा-शक्ति कार्य लिया जायेगा तो उन्हें किसी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की दिशा में सक्रिय प्रयास करना होगा ।

ताराचंद दीक्षित ने भारतीय पृष्ठभूमि में समाजवाद की समीक्षा करते हुए कहा है - "सामन्ती शोषण का अंत, तीव्र औद्योगीकरण, सहकारिता का विकास, पंचायती राज्य, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के विशेषाधिकारों की समाप्ति और योजना संबंधी कार्य तो अपने देश में हुए हैं किन्तु समाजवाद के

मूल तत्वों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है । बेकारी, बढ़ती कीमतें, मुनाफ़ा, गरीबी, जनसंख्या, अन्नाभाव तथा असमानता की समस्याएं अब भी विद्यमान हैं । इस दुर्भाग्य का प्रमुख कारण यह है कि अपने देश में समाजवाद के रूप और सिद्धान्त को लेकर अबीज धुंधलापन छाया हुआ है । इसके साथ ही, स्वार्थपरता, प्रशासन में ढीलापन, खींचा-तानी, जातिवाद, क्षेत्रवाद और पद-लिप्सा जैसी कुत्सित धारणाएं अपनी जड़ें जमाये हैं ।[1] यदि देश में समाजवाद स्थापित करना है तो सबसे पहले जरूरी है सभी नेताओं ने समाज के सामने ऊंचा आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए ।

निराला के गद्य-साहित्य में समाजवाद : एक संक्षिप्त विवेचन

निराला ने गद्य-साहित्य की रचना करके हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया । उसके अन्तर्गत उपन्यास, रेखाचित्र, कहानी, निबंध, आलोचना और जीवनी समाविष्ट हैं ।

निराला के `अप्सरा` उपन्यास में वेश्या की करुण स्थिति का वर्णन समाज-सुधारक की दृष्टि से किया है । उसका आत्म-त्याग, वैभव और विलास की दुनिया से उतरकर गृहस्थ की कुलगृहिणी बनने की लालसा, उसका साहस और उद्दाम संघर्ष इस आधिकारिक घटना के मूल में विद्यमान है । कथा में काल्पनिकता है, फिर भी वस्तुस्थिति अत्यधिक प्रामाणिक और रोचक है ।

`अलका` में छायावादी भाव-वृत्ति से अवगुंठित प्रणय की हृदयस्पर्शी कथा है जो आदर्श प्रेम के संबंध में लेखक की वैयक्तिक धारणा स्पष्ट करती है । `अलका` का नायक प्रेम की पृथक सत्ता एवं निष्ठा से परिपूर्ण है । गांव में प्रचलित अंधविश्वास और ढोंगी साधुओं के पाखण्ड की ओर भी संकेत है ।

१- डा० लोहिया का समाजवादी दर्शन ; तारानन्द दीक्षित, पृ० ४२, प्र० सं०

`निरुपमा` एक सामाजिक उपन्यास है । इसकी कथा सर्वाधिक गठित तथा सफलतापूर्वक चरम सीमा पर पहुंच कर समाप्त होती है ।

`प्रभावती` निराला का एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें तत्कालीन वातावरण सजीव और साकार हो उठा है । `प्रभावती` में मध्यकालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति सजीव हो उठी है । राजनीतिक षड्यंत्र, आपसी फूट तथा गृहयुद्ध का सफल चित्रण निराला ने प्रस्तुत किया है ।

`काले कारनामे` उपन्यास निराला का अंतिम अपूर्ण उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास वातावरण-प्रधान है । इसमें विविध वर्गगत पात्रों के माध्यम से जमींदार वर्ग की कूटनीति, पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार और अधिकारी वर्ग के स्वार्थ का दिग्दर्शन कराया गया है ।

`चमेली` एक अपूर्ण उपन्यास है । इसे उनका प्रथम यथार्थवादी उपन्यास कहा जा सकता है ।

`इन्दुलेखा` भी एक अपूर्ण उपन्यास है जिसका केवल एक परिच्छेद लिखा गया था । आज भी समाज में यह समस्या है कि प्रेम करने वाले प्रणय-सूत्र में नहीं बंध पाते । निराला ने यही समस्या उठायी थी किन्तु खेद है कि उपन्यास अधूरा रहा । जितना अंश प्रकाशित हुआ है, उससे यह कहा जा सकता है कि यह एक सामाजिक उपन्यास होता ।

`बिल्लेसुर बकरिहा` एक औपन्यासिक रेखाचित्र है । निराला बिल्लेसुर का जीवन-चरित नहीं लिख रहे, किन्तु वर्णन ऐसा है मानो आंखों-देखी बातें लिख रहे हैं । `बिल्लेसुर` की कथा में काफी दर्द है किन्तु कहीं कटुता नहीं है । कथा में व्यंग्य दबा हुआ है । निराला के प्रसन्न हास्य पुट्ठा में सारी कथा रंगी हुई है ।

निराला की कहानियां `लिली`, `सखी`, `सुकुल की बीवी`, `चतुरी चमार` और `देवी` में संकलित हैं । कुछ कहानियों की पुनरावृति कहानी-संग्रहों में हुई है । निराला की एक कहानी `दो दाने` उनके मृत्यु-उपरान्त प्रकाशित हुई । इसमें समाज के शोषण और अनाचार का खुलकर चित्रण किया गया है । पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए मनुष्य को कैसे-कैसे कार्य करने पड़ते हैं, यह इस कहानी का कथ्य है । `गबनंद शास्त्रिणी` में उसके चरित्र-चित्रण द्वारा लेखक एक ओर जहां समाज पर व्यंग्य करता है, वहां दूसरी ओर उसके चरित्र-चित्रण में लेखक ने सूक्ष्म मनोविज्ञान का परिचय दिया है । निराला समाज की जड़ता, कुरीति, अंधविश्वास, जातिवाद, गरीबी तथा अत्याचार के कट्टर दुश्मन थे, इसका परिचय हमें उनके कहानियों में मिलता है । उनकी अधिकांश कहानियों में नारी की तत्कालीन सामाजिक अवस्था का चित्रण हुआ है । कहानियों का भाव-पक्ष सबल है । इसमें वर्णन और चित्रण की प्रधानता है । स्थान-स्थान पर व्यंग्य के चुभते वाक्य भाषा और भाव में जान डाल देते हैं । निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व सचमुच ही निराला है ।

जीवनी साहित्य के अन्तर्गत भक्त ध्रुव, भक्त प्रह्लाद, भीष्म, महाराणा प्रताप आदि का समावेश है । निराला की जीवनियां चरित्र-प्रधान हैं । पात्रों का चरित्र प्राय: परम्परागत और आदर्शमय है जिसमें यथास्थान संघर्ष, अन्तर्द्वंद्व आदि का भी समावेश किया है - जैसे, युद्ध के उपरान्त महाराणा को जंगल-जंगल भटकना पड़ा । उनके पास न सिपाही थे, न लड़ने की शक्ति, न भोजन के लिए अन्न । सब तरह से असहाय होने पर भी प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार न की । किन्तु कष्टों की बाढ़ से महाराणा के मन में एक प्रकार का परिवर्तन आरंभ हो गया । प्यारी पुत्री के साथ भाग्य ने ठिठोली की, उसे वे न सह सके - "बची हुई रोटी का टुकड़ा रखे हुए प्रताप की लड़की बाहर की बातों में बहल रही थी, उस समय मौका पा, कहीं से एक जंगली बेबला झपटा, उस लड़की की बांह से लड़की की रोटी का वह टुकड़ा फौरन लेकर चलता बना । लड़की चौंक कर रोने लगी । प्रताप ने देखकर दृष्टि फेर ली ।

पद्मावती ने भी भागते हुए नेवले को देखा । मुंह फेरकर आंसू पोंछ लिये ।[1]
निराला का जीवनी-साहित्य जीवनी-कला की कसौटी पर सही उतरता है ।

प्रबंध पद्म, प्रबंध प्रतिमा, चाबुक, चयन, संग्रह आदि निराला के निबंध-संग्रह हैं । निराला का निबंध-साहित्य हिन्दी की अमूल्य सम्पत्ति है । उनके निबंधों को विषय की दृष्टि से सामाजिक, साहित्यिक, संस्मरणात्मक, जीवनीपरक, दार्शनिक, धार्मिक आदि विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है । प्राय: अधिकांश निबंध उस युग की ज्वलन्त समस्याओं से संबंधित है तथा हास्य-व्यंग्य द्वारा उन्होंने अपनी बात को बहुत मनोरंजक बना दी है ।

निराला द्वारा संपादित मतवाला, समन्वय, सुधा तथा रंगीला उनके संपादन-कौशल की विशेषता पर प्रकाश डालते हैं । संपादक के रूप में उन्होंने हिन्दी के कार्य को आगे बढ़ाया । संपादक के रूप में निराला के सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक - सभी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं ।

निराला महान आकांक्षाओं के साहित्यकार थे और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वे सदैव सजग रहते थे । कथा-साहित्य के मूल में निराला के व्यक्तित्व, उसकी चेतना का इतिहास विद्यमान है । निरन्तर दु:ख की छाया में पलने से निराला के हृदय में समाज के प्रति एक विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी । जीवन का कटु यथार्थ उन्हें काटने लगा था । विक्षुब्ध आत्मा अभावों की पूर्ति और निर्धारित लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ी ।

भारत का कल्याण समाजवादी भावधारा ही से हो सकता है, पर अभी तक कांग्रेस ने इसे अपना लक्ष्य नहीं बनाया । निरालाजी का तो निश्चित मत है कि देश की आर्थिक उपज और भूमि तथा व्यवसाय का समाजीकरण हो

- -

१- निराला रचनावली-७ ; संपा० नंदकिशोर नवल, पृ० २७०

जाने के बाद देश के कोने-कोने में फैली साम्प्रदायिक विषमता का भी अपने-आप अन्त हो जायेगा और देश में सामूहिक सुख-शांति की स्थापना सहज संभव हो जायेगी । उनके साहित्य में समाजवाद का स्वर बहुत ऊंचा और व्यापक है । निराला ने अपने रक्त से सींककर हमारी नयी पीढ़ी की राह प्रशस्त की और अपनी बड़ी-बड़ी स्वप्निल, स्नेहासिक्त आंखों से संसार को सिक्त किया । निराला ने सामाजिक कुरीतियों का विद्रोह किया और तीखे व्यंग्य से अपनी कथा-कृतियों में कूरतम आघात किया ।

उनके कथा-कृतियों के पात्रों में पूंजीवादी समाज के प्रति प्रबल विरोध है, शोषकों की भर्त्सना है और धार्मिक आडम्बरों पर आक्रमण है, प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों का विरोध है परन्तु उग्र की तरह वे कहीं भी ध्वंसात्मकता या कुरुचि का परिचय नहीं देते और जीवन की कुत्साओं में रस नहीं लेते । समाज में गलित पक्षों एवं रूढ़ियों का उन्होंने बड़ी व्यंग्यात्मक शैली में पर्दाफाश किया । निराला की कथा-कृतियों में पीड़ित मानवता के अप्सरा, अलका, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चतुरी चमार, देवी आदि में जो पात्र चित्रित हैं, वे क्रांति बाहरकी नहीं, भीतर की करते हैं जो वैचारिक क्रांति है और निरालाजी ने निश्चित रूप से इस क्रांति को गरिमा प्रदान की । विद्रोह की अमित शक्ति, अन्याय के प्रति उत्कट भावना से प्रेरित हो, उन्होंने कथा-साहित्य की सृष्टि की है । प्रचलित मान्यताओं और रूढ़ियों को जैसी स्वस्थ चुनौती निराला दे पाये, उतना समकालीन कोई साहित्यकार नहीं दे पाया ।

उनका कथा-साहित्य विचारोत्तेजक है और नये वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों से दूर तक का परिचय कराता है । उनका कथा-साहित्य जीवनगत परिस्थितियों, संस्कारों एवं विविध मनोदशाओं के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक अवस्था और तद्विषयक आंदोलन के प्रभाव अपने में ग्रहण कर निर्मित हुआ है ।